रविवारीय

अपनी ही परछाई में उलझता एआई



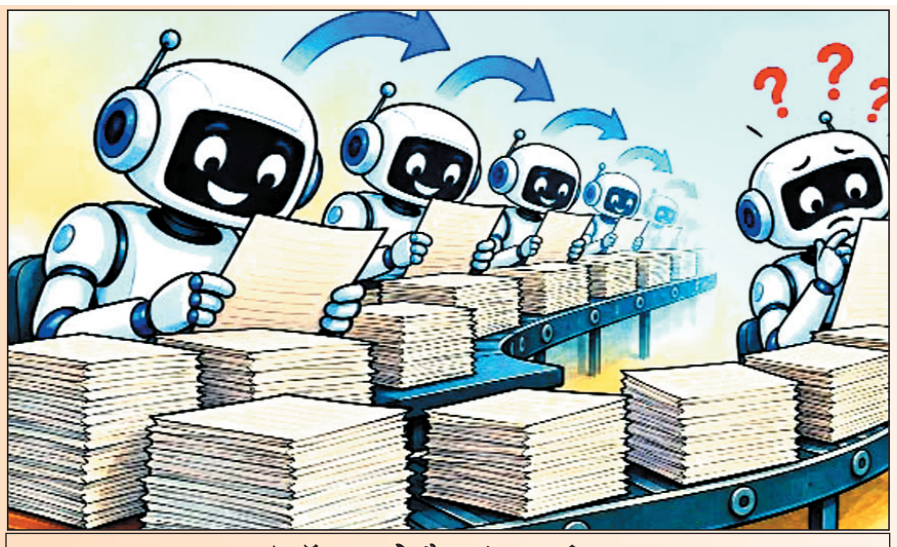
वीना गौतम

इंटरनेट पर आज बड़ी मात्रा में ऐसी सामग्री मौजूद है, जिसे इंसानों के बजाय कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) ने तैयार किया है. ब्लॉग, उत्पादों की समीक्षाएं, समाचारों के सार और सोशल मीडिया पोस्ट तक मशीनें लिख रही हैं. अब एक सवाल उठ रहा है. अगर एआई के नए मॉडल उसी सामग्री से सीखने लगें, जिसे पुराने एआई मॉडल ने तैयार किया है, तो क्या होगा? क्या मशीनें धीरे-धीरे अपनी ही बनाई सामग्री में उलझकर मौलिक जानकारी खोने लगेंगी?

वैज्ञानिक इस खतरे को 'मॉडल कोलैप्स' यानी मॉडल के ढहने की स्थिति कहते हैं. वर्ष 2024 में प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिका नेचर में इल्या शुमैलोव और उनके साथियों का शोध प्रकाशित हुआ. इसमें दिखाया गया कि जब एक भाषा मॉडल को लगातार पिछली पीढ़ी के मॉडल से तैयार सामग्री पर प्रशिक्षित किया जाता है, तो उसकी गुणवत्ता धीरे-धीरे गिरने लगती है.

शोध में मध्यकालीन यूरोपीय वास्तुकला से जुड़ी सामग्री का उदाहरण लिया गया. शुरुआती मॉडल सही जानकारी दे रहे थे, लेकिन कई पीढ़ियों के बाद जवाब विषय से भटकने लगे. नौवीं पीढ़ी तक पहुंचते-पहुंचते मॉडल गिरजाघरों की चर्चा छोड़कर खरगोशों की अलग-अलग प्रजातियों का जिक्र करने लगा.

ऐसा क्यों होता है? कोई भी एआई मॉडल अपने प्रशिक्षण के दौरान बार-बार सामने आने वाली जानकारी और सामान्य पैटर्न को अच्छी तरह सीखता है. इसके उलट, दुर्लभ और असामान्य जानकारियां उसकी पकड़ से छूट सकती हैं. जब वही मॉडल नई



'मॉडल कोलैप्स' का संकट

सामग्री तैयार करता है, तो उसमें पहले से मौजूद सामान्य बातों की पुनरावृत्ति बढ़ जाती है और कई अनोखे तथ्य पीछे छूट जाते हैं. अगली पीढ़ी का मॉडल इसी सीमित सामग्री से सीखता है. यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाए तो जानकारी की विविधता कम होने लगती है. इसे फोटोकॉपी की फोटोकॉपी से समझा जा सकता है. हर नई कॉपी में कुछ बारीकियां मिटती जाती हैं. अंत में मूल दस्तावेज का धुंधला रूप ही बचता है. इसी तरह, मशीनों की बनाई सामग्री पर लगातार निर्भरता से भाषा की विविधता और जानकारी की बारीकियां प्रभावित हो सकती हैं.

परमाणु परीक्षणों से जुड़ा एक अनोखा उदाहरण

इस खतरे को समझने के लिए परमाणु युग का एक उदाहरण भी दिलचस्प है. वर्ष 1945 के बाद परमाणु परीक्षणों से वातावरण में रेडियोधर्मिता फैल गई. इसके कारण बाद में तैयार होने वाले स्टील में भी रेडियोधर्मिता के अंश पाए जाने लगे. चिकित्सा और वैज्ञानिक उपकरणों में कुछ विशेष कामों के लिए बेहद शुद्ध स्टील की जरूरत होती है. इसलिए परमाणु परीक्षणों से पहले तैयार किया गया स्टील दुर्लभ और मूल्यवान हो गया.

इसे 'लो-बैकग्राउंड स्टील' कहा जाता है. इसके लिए पुराने जहाजों के मलबे से भी स्टील निकाला गया.इसी तरह, एआई के व्यापक प्रसार से पहले इंसानों द्वारा तैयार की गई मौलिक सामग्री भविष्य में महत्वपूर्ण संसाधन बन सकती है. हालांकि दोनों स्थितियों के पीछे वैज्ञानिक कारण अलग हैं, लेकिन दुर्लभ और शुद्ध सामग्री के महत्व को समझने के लिए यह एक उपयोगी उपमा है.

हिंदी और भारतीय भाषाओं के सामने बड़ी चुनौती

हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं में मौलिक डिजिटल सामग्री का भंडार अंग्रेजी की तुलना में सीमित है. ऐसे में अगर इंटरनेट पर मशीनों द्वारा तैयार और अनुवादित सामग्री का अनुपात लगातार बढ़ता है, तो भविष्य के एआई मॉडल के सामने भाषाई विविधता बनाए रखने की चुनौती और बड़ी हो सकती है.हिंदी के मुहावरे, लोकबोलियां, क्षेत्रीय शब्द और अलग-अलग सामाजिक अनुभव हमारी भाषा की असली पहचान हैं. मशीनों द्वारा तैयार सामग्री पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता इन विशेषताओं को कमजोर कर सकती है. यह एक संभावित खतरा है, जिसका असर अभी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है.

समाधान: इंसानी रचनात्मकता को बचाना होगा

वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ इस चुनौती से निपटने के लिए प्रशिक्षण में मौलिक मानवीय सामग्री की पर्याप्त हिस्सेदारी बनाए रखने, मशीनों द्वारा तैयार सामग्री की पहचान करने और विश्वसनीय स्रोतों से गुणवत्तापूर्ण डेटा जुटाने जैसे उपायों पर जोर देते हैं. लेखकों, पत्रकारों और प्रकाशकों की मौलिक रचनाओं का महत्व भी इसी कारण बढ़ जाता है. मशीनों को बेहतर बनाने के लिए इंसानी रचनात्मकता जरूरी है. एआई की असली ताकत केवल उपलब्ध सामग्री को दोहराने में नहीं, बल्कि विविध और विश्वसनीय ज्ञान से सीखने में है. अगर इंटरनेट पर मौलिक लेखन और मानवीय अनुभवों की जगह लगातार मशीनों की बनाई सामग्री लेती गई, तो भविष्य की कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सामने भी ज्ञान की विविधता बनाए रखने का संकट खड़ा हो सकता है.

करें चाय वाला ध्यान

आर. सी. शर्मा

सजगता का नाम सुनते ही हमें लगता है कि कोई गुरुजी आंखें मूंदे, पालथी मारकर घंटों बैठने को कहेंगे. जबकि सच यह है कि यह चीज आपकी रसोई में, चाय के कप में पहले से मौजूद है. सजगता यानी बस इतना कि जो कर रहे हैं, उसी में पूरे मन से शामिल रहिए. हम अक्सर चाय पीते हुए अखबार पढ़ते हैं, अखबार पढ़ते हुए फोन देखते हैं और फोन देखते हुए सोचते हैं कि दफ्तर में कल क्या होगा. नतीजा यह कि चाय ठंडी हो जाती है और हमें पता ही नहीं चलता कि पी भी ली. शरीर एक जगह होता है, मन किसी और जगह और बीच में बेचारी चाय अकेली पड़ी रह जाती है.



इस रविवार आजमाइए

देखिए: कप उठाने से पहले भाप को उठते देखिए. उसका रंग, उसकी लहर और हवा में घुलकर गुम होने का उसका अंदाज महसूस कीजिए.

सूंघिए: अदरक, इलायची या चाय की पत्ती की खुशबू को दो पल दीजिए. आंखें बंद हों तो खुशबू और गहरी लगेगी.

छूइए: हथेलियों में कप की गर्माहट महसूस कीजिए. सर्दी की सुबह हो तो यह सुख दोगुना हो जाता है.

चखिए: पहला घूंट धीरे से लीजिए. मिठास कहां है, गर्माहट गले में कहां तक जा रही है, इस पर गौर कीजिए. फोन दूर, अखबार बंद, मन भटके तो घबराइए मत. वह तो भटकेगा ही, बंदर जो ठहरा. बस उसे पकड़कर वापस चाय के पास ले आइए. सजगता का असली अभ्यास भटकने में नहीं, लौट आने में है. हर बार लौटना मन की एक छोटी कसरत है.

यही तरकीब रोजमर्रा की छोटी-छोटी चीजों पर भी आजमाई जा सकती है. नहाते समय पानी की बूंदों पर, चलते समय पैरों के नीचे की जमीन पर और बर्तन धोते समय हाथों की हरकत पर ध्यान दीजिए. कहते हैं, दादी-नानी बिना इसका नाम जाने ही ऐसा करती थीं. आटा गूंधते हुए उनका पूरा ध्यान आटे में होता था. शायद इसीलिए उनके हाथ की रोटी में स्वाद भी होता था. उनके लिए यह कोई साधना नहीं थी, बस काम को प्रेम से करने का सहज तरीका था.

रविवार इसके लिए सबसे अच्छा दिन है, क्योंकि आज घड़ी थोड़ी धीमी चलती है. न दफ्तर की घंटी, न स्कूल की भागदौड़. तो आज की चाय सिर्फ चाय रहने दीजिए, बाकी दुनिया कल देख लेंगे.



बुजुर्गों को दवा और पेंशन के साथ एक श्रोता भी चाहिए

मधु सिंह

सुबह सात बजे कॉलोनी के पार्क की तीसरी बेंच पर सेवानिवृत्त शिक्षक मिश्रा जी रोज पहुंच जाते हैं. हाथ में अखबार है, पर नजर बार-बार जेब में रखे फोन पर जाती है. बेटा बेंगलुरु में है, बेटी सिडनी में. फोन दिन में एक बार बजता है. 'पापा, सब ठीक? दवा ली?' 'हां, सब ठीक.' पांच मिनट बाद फोन कट जाता है और बाकी दिन फिर वही लंबी चुप्पी.

मिश्रा जी को पैसे की तंगी नहीं है, इलाज की भी नहीं. उन्हें तकलीफ इस बात की है कि दिन भर बोलने वाला कोई नहीं.

कुछ दशक पहले तक बुजुर्गों का सामाजिक जीवन बिना किसी योजना के चलता था. मंदिर का चबूतरा, नुक्कड़ की चाय, पान की दुकान की बहसें, शाम की कथा. संयुक्त परिवार में दादाजी के पास पोते का होमवर्क होता था और बहू के पास सलाह मांगने का बहाना.

आज कॉलोनियों के गेट बंद हैं, पड़ोसी का नाम तक पता नहीं, और घर इतने बड़े हैं कि आवाज दीवारों से टकराकर लौट आती है. शोध बताते हैं कि लंबा अकेलापन सेहत के लिए गंभीर जोखिम है, यानी यह सिर्फ मन का नहीं, तन का भी मामला है.

इसका इलाज किसी बड़ी योजना में नहीं, छोटी-छोटी बातों में छिपा है. सोचिए, अगर मिश्रा जी जैसे शिक्षक हफ्ते में दो शाम मोहल्ले के बच्चों को गणित पढ़ा दें, तो बच्चों को मुफ्त ट्यूशन मिलेगी और मिश्रा जी को वह चीज जो पेंशन से नहीं मिलती, यानी जरूरत महसूस होना. हर कॉलोनी में ऐसे दर्जनों हुनर हैं: सिलाई, बागवानी, हारमोनियम, पुराने किस्से. बस उन्हें जोड़ने वाला कोई चाहिए.

पड़ोसियों की भूमिका भी बड़ी है. अकेले रहने वाले बुजुर्ग के दरवाजे की घंटी दिन में एक बार बज जाए, तो यह सिर्फ हालचाल नहीं, भरोसा है कि कोई उनकी परवाह करता है. और जो युवा बुजुर्गों को वीडियो कॉल या यूपीआई सिखा दें, वे उन्हें सिर्फ तकनीक नहीं, दुनिया से जुड़ने की चाबी देते हैं.यह अकेलापन सिर्फ मन का नहीं, तन की सेहत का भी बड़ा जोखिम है.

दूर बैठे बच्चे करें

फोन पर 'दवा ली?' के बाद एक सवाल और जोड़ें: 'आज आपकी राय चाहिए थी.' रोज एक बार फोन के बजाय हफ्ते में दो-तीन बार वीडियो कॉल करें और पोते-पोतियों से भी बात कराएं. .

पड़ोसी और युवा करें

अकेले रहने वाले बुजुर्ग के दरवाजे की घंटी दिन में कम से कम एक बार बजाएं. उन्हें वीडियो कॉल, यूपीआई और स्मार्टफोन चलाना सिखाएं. त्योहार या शाम की चाय पर उन्हें अपने साथ बैठने का न्योता दें.

बुजुर्ग खुद करें

अपने हुनर को पहचानें. पढ़ाना, सिलाई, बागवानी, संगीत या पुराने किस्से सुनाना. हफ्ते में दो शाम मोहल्ले के बच्चों को पढ़ाने या कुछ सिखाने का समय तय करें. रोज सुबह पार्क या चबूतरे पर तय समय पर पहुंचें, ताकि हमउम्र लोगों से मुलाकात की आदत बने.

मूक पशुओं की आंखों से पढ़िए धरती का दर्द



योगेश कुमार गोयल

विश्व पशु कल्याण दिवस आज

किसी जंगल में चुपचाप चरता हिरण, आकाश में स्वच्छंद उड़ता पक्षी, पानी में तैरती मछली, अपने बच्चे को दुलारती हथिनी या मनुष्य के घर के बाहर वफादारी से बैठा कोई श्वान, इन सबकी आंखों में जीवन की अपनी एक अलग कहानी होती है.वे हमारी भाषा में बोल नहीं सकते लेकिन भय, भूख, पीड़ा, स्नेह, सुरक्षा और अपनत्व को उसी तरह महसूस करते हैं, जैसे मनुष्य करता है.अंतर केवल इतना है कि मनुष्य अपनी संवेदनाओं को शब्द दे सकता है और पशु अपनी संवेदनाओं को मौन में जीते हैं.शायद इसीलिए इस वर्ष 4 अक्तूबर को मनाया जा रहा 'विश्व पशु दिवस' हमें एक अत्यंत सार्थक संदेश देता है, 'उनकी नजरों से दुनिया को देखें'. यह केवल पशुओं के प्रति दया दिखाने का आह्वान नहीं, मनुष्य-केंद्रित दृष्टि से बाहर निकलकर उस दुनिया को समझने का आग्रह है, जिसमें पृथ्वी पर रहने वाले अन्य जीव भी उतने ही महत्वपूर्ण हिस्सेदार हैं.जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण, शहरी विस्तार, समुद्री प्रदूषण और प्राकृतिक आवासों के निरंतर सिकुड़ने का प्रभाव केवल मनुष्य पर नहीं पड़ता बल्कि प्रत्येक परिवर्तन वन्यजीवों के जीवन, भोजन, आवास और प्रजनन-चक्र को प्रभावित करता है।

महात्मा गांधी का प्रसिद्ध विचार है कि किसी राष्ट्र की महानता और उसकी नैतिक प्रगति का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वहां पशुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है.इस विचार की प्रासंगिकता आज पहले से कहीं अधिक है.

इस वर्ष की थीम हमें विकास की हर योजना के सामने एक सरल प्रश्न रखने को कहती है कि यदि यह निर्णय उस पशु की आंखों से देखा जाए तो उसे कैसा लगेगा? यही प्रश्न हमारी संवेदना को व्यवहार में बदल सकता है.किसी पालतू पशु को रखना केवल उसके साथ तस्वीर खिंचवाने का शौक नहीं बल्कि जीवनभर की जिम्मेदारी है.

व्यंग्य

स्वर्ग में इंटरनेट...



रवि उपाध्याय
(लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

स्वर्ग में धर्मराज की धर्मसभा सजी हुई थी. सभी सभासद अपने-अपने सिंहासनों पर विराजमान थे. सेवादार मुस्तैदी से खड़े थे. सभा कक्ष प्रकाश से जगमगा रहा था. गवाक्षों से आती शीतल, सुगंधित हवा वातावरण को सुखद बना रही थी. तभी सभा भवन में आवाज गूंजी, 'महाराज धर्मराज पधारने वाले हैं. सभी सचेत हो जाएं.' सभा में सन्नाटा छा गया. धर्मराज के आसन ग्रहण करते ही सभा की कार्यवाही शुरू हुई. उनके दाईं ओर चित्रगुप्त लैपटॉप थामे खड़े थे.

धर्मराज ने कहा, 'चित्रगुप्त, पहले पृथ्वी लोक का ताजा हाल सुनाओ.'

चित्रगुप्त बोले, 'प्रभु, इन दिनों पृथ्वी पर पितृपक्ष चल रहा है. लोग अपने पूर्वजों के लिए तर्पण और श्राद्ध कर रहे हैं. सोशल मीडिया पर मृत माता-पिता और पूर्वजों की तस्वीरें डालकर श्रद्धांजलि दे रहे हैं. इनमें वे माता-पिता भी हैं, जिन्हें उनके सपूत वृद्धाश्रम छोड़ आए थे और जिनकी मृत्यु वहीं हुई.'

'प्रभु, पुण्यतिथि पर ब्राह्मणों और स्वजनों को पकवान परोसे जा रहे हैं. ये वही माता-पिता हैं, जिन्होंने अपनी सारी जमा-पूंजी बच्चों का जीवन संवारने में लगा दी, लेकिन अपने जीवनकाल में कभी ऐसे पकवान नसीब नहीं हुए. भोजन के बाद मेहमान बेटे की तारीफ करते नहीं थकते. बेटा हाथ जोड़कर कहता है, 'हमने तो वही पकवान बनवाए हैं, जो बाबूजी को पसंद थे.'

एक मेहमान बोला, 'बेटा हो तो ऐसा! पिता के प्रति आज भी कितनी श्रद्धा है.'

पास खड़ा दूसरा मेहमान मन ही मन बुदबुदाया, 'वाह! क्या मस्का लगा रहा है.' बेटे के जाते ही वह बोल पड़ा, 'कितना झूठ बोलते हो भाई!'

पहला मेहमान मुस्कराया, 'भाई, बेटा भले ही नमकहराम निकला हो, लेकिन हम तो अभी-अभी उसका नमक खाकर निकले हैं. इतनी जल्दी नमकहरामी कैसे करें?'

यह सुनकर धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा, 'ऐसे बेटों पर विशेष निशान लगा दो. समय पूरा होने पर इन्हें सीधे नरक भेजना.'

फिर पूछा, 'इनके पिता कहां हैं?'

'महाराज, वे तो नरक में हैं. उन्हें यहां बुलाया तो वापस भेजना संभव नहीं होगा.'

'तो वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग पर बात कराओ.'

एक पिता की आत्मा को स्क्रीन पर बुलाया गया. धर्मराज ने बेटे की सोशल मीडिया पोस्ट दिखाते हुए कहा, 'देखो, तुम्हारी पुण्यतिथि पर कितना शानदार आयोजन हुआ है. मंत्री, नेता और उनके चमचे गुलाब जामुन उड़ा रहे हैं. बेटा तुमसे कितना प्रेम करता है!'



पिता बोले, 'प्रभु, मेरी मौत बीमारी में दवाएं न मिलने से हुई. बेटों को अच्छे स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाया, रिश्वत देकर नौकरी लगवाई और धूमधाम से शादियां कीं. लेकिन मेरे बीमार पड़ते ही बेटा पत्नी के साथ अलग हो गया और मुझे वृद्धाश्रम छोड़ आया.'

धर्मराज ने पूछा, 'इसे नरक क्यों मिला?'

चित्रगुप्त बोले, 'महाराज, सरकारी नौकरी में इसने खूब भ्रष्टाचार किया. उसी धन से बच्चों को पढ़ाया और शादियां कराईं. इसी कर्म का फल भुगत रहा है. बेटी भी दुखी है. उसका पति उसे छोड़ चुका है.' तभी छेदी बाबू की नींद खुल गई. पत्नी उन्हें झिंझोड़ रही थी, 'कब तक पड़े रहोगे? सुबह के पांच बज गए. जब से रिटायर हुए हो, पलंग तोड़ रहे हो. ऐसे ही पड़े रहे तो बीमार पड़ जाओगे. और सुन लो, वृद्धाश्रम में छोड़ आऊंगी!'

छेदी बाबू मुस्कराए, 'भागवान, गुस्सा क्यों होती हो? वृद्धाश्रम भी साथ-साथ चलेंगे. सात जन्म साथ निभाने का वादा किया था.'

पत्नी झेंपकर बोली, 'चलो हटो, बेशर्म कहीं के! और सुनो, आज पहली तारीख है. पेंशन आएगी तो मेरे लिए अच्छी-सी साड़ी ले आना. दो दिन बाद करवाचौथ है.'

छेदी बाबू बोले, 'मुझे भी नया अंडरवियर लेना है. पुरानी में छेद हो गए हैं.' पत्नी ने तुरंत टोका, 'फालतू खर्च की जरूरत नहीं. पुरानी लुंगी से काम चलाओ. छेदों से हवा तो आती है!' छेदी बाबू चुप हो गए. फिर सपने को याद कर सोचने लगे, स्वर्गलोक कितना आगे निकल गया है! वहां इंटरनेट, लैपटॉप और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सब हैं. और सबसे बड़ी बात, वहां की अदालतें और सरकार यहां की तरह डरपोक नहीं हैं.

यात्रा पर निकलें तो तस्वीरें ही नहीं, आवाजें भी सहेजें

समीर चौधरी

कल्पना कीजिए, सुबह चार बजे बनारस के घाट पर खड़े हैं. आंखें बंद हैं और कानों में मंदिर की घंटियां, शंख की गूंज, गंगा की लहरों से टकराती नावों की आवाज और कहीं दूर से आती मंत्रोच्चार की ध्वनि घुल रही है. बिना कुछ देखे भी आप उस जगह का अहसास कर सकते हैं. इसी तरह किसी पहाड़ी कस्बे में शाम को स्कूल की छुट्टी की घंटी, खच्चरों के गले में बंधी घंटियों की टुनटुन और पेड़ों से गुजरती हवा मिलकर एक अलग ही संगीत रचते हैं.

हर जगह की अपनी एक ध्वनि-पहचान होती है. किसी बाजार में दुकानदारों की आवाजें और मोलभाव, समुद्र किनारे मछुआरों के गीत, किसी कारीगर की हथौड़ी की लय या गांव में सुबह सुनाई देने वाली चिड़ियों की चहचहाहट. ये आवाजें उस स्थान के जीवन, संस्कृति और रोजमर्रा की गतिविधियों की कहानी कहती हैं. तस्वीरें दृश्य दिखाती हैं, लेकिन आवाजें उस दृश्य के भीतर का जीवन महसूस कराती हैं. यात्रा में कैमरा हर दृश्य को सहेज लेता है, लेकिन किसी जगह की असली पहचान उसकी आवाजों में छिपी होती है. अगली बार सफर पर निकलें, तो नजारों के साथ ध्वनियों को भी अपनी यादों का हिस्सा बनाइए.



हम घूमने जाते हैं तो कैमरे और मोबाइल की मदद से हर खूबसूरत दृश्य को कैद करने में जुट जाते हैं. पहाड़, झरने, ऐतिहासिक इमारतें, समुद्र और बाजार, सबकी तस्वीरें हमारे फोन में जमा हो जाती हैं. लेकिन क्या कभी हमने किसी यात्रा से लौटकर वहां की आवाजें सुनने की इच्छा की है? किसी जगह को याद रखने का एक अनूठा रास्ता उसकी ध्वनियों से भी होकर गुजरता है.

सुनने का नया अनुभव

अगली यात्रा में एक छोटा-सा प्रयोग कीजिए. किसी नई जगह पहुंचकर तीन मिनट के लिए फोन जेब में रख दें. न तस्वीर खींचें, न किसी से बात करें. बस आसपास की आवाजों पर ध्यान दें. आप हैरान होंगे कि एक ही जगह पर कितनी तरह की ध्वनियां मौजूद हैं. फिर मोबाइल में एक मिनट की रिकॉर्डिंग कर लें. बाजार की हलचल, बारिश की बूंदें, स्टेशन की उद्घोषणा या किसी स्थानीय कलाकार का गीत, ये छोटी रिकॉर्डिंग लौटने के बाद आपकी यात्रा को फिर से जीवंत कर सकती हैं. स्थानीय लोगों से बातचीत करते हुए उनकी बोली का कोई शब्द या कहावत भी सीखें. भाषा किसी जगह की सांस्कृतिक स्मृति को समझने का रास्ता है. चाहें तो किसी परिचित रास्ते पर कुछ देर आंखें बंद करके, किसी साथी के साथ केवल ध्वनियों को महसूस करने का अनुभव भी ले सकते हैं. ऐसा प्रयोग सुरक्षित और शांत स्थान पर ही करें.

अगली बार सफर पर निकलें, तो कैमरे के साथ अपने कानों को भी तैयार रखिए. तस्वीरें आपको याद दिलाएंगी कि आपने क्या देखा था.आवाजें उस पल में दोबारा पहुंचा देंगी, जिसे आपने कभी जिया था. क्योंकि कई बार यात्रा की सबसे गहरी याद कोई खूबसूरत दृश्य नहीं, बल्कि हवा में घुली कोई अनजानी धुन होती है.

यात्रा की यादों का नया खजाना

आज जब यात्राएं अक्सर तस्वीरें खींचने और उन्हें साझा करने तक सिमट जाती हैं, तब सुनने की यह आदत हमें ठहरना सिखाती है. हम जगहों को सिर्फ देखने के बजाय उनके जीवन से जुड़ने लगते हैं. यात्रा-लेखन और पत्रकारिता में भी ध्वनियों का उपयोग एक नया अनुभव दे सकता है. किसी रिपोर्ट के साथ स्थानीय परिवेश की छोटी ऑडियो रिकॉर्डिंग या क्यूआर कोड जोड़कर पाठकों को उस जगह से जोड़ा जा सकता है. वे लेख पढ़ते हुए उसी बाजार की हलचल, मंदिर की घंटियां या समुद्र की लहरें सुन सकेंगे.